भारतीय ज्ञान धरोहर
विमर्श और परंपरा

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान धरोहर

विमर्श और परम्परा

सम्पादक

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2023

ISBN : **978 - 81 - 89435 - 69 - 1**

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान धरोहर : विमर्श और परम्परा

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

13

रहीम के साहित्य में नीति तत्व

ओम प्रकाश शर्मा
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

रहीम का काव्य भारतीय लोक-संस्कृति का जीवंत रूप है। उनके दोहों में लोकजीवन, लोक-भावना और जन-अनुभव स्वाभाविक रूप से प्रकट होते हैं। सबसे पहले उनके काव्य में लोक साहित्य की प्रमुख छाप मिलती है। उन्होंने रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत जैसी कथाओं तथा लोकगाथाओं को अपने काव्य का आधार बनाया। राजा शिवि और दधीचि जैसे कथानक लोकमानस में त्याग और परोपकार के प्रतीक थे, जिन्हें रहीम ने नीति और जीवन-दर्शन के रूप में दोहों में रूपायित किया। इस प्रकार उनका साहित्य धर्मगाथा की उस परंपरा से जुड़ जाता है जो पीढ़ियों से जनमानस में प्रचलित रही है।

रहीम के काव्य में लोक-कला और ब्रज संस्कृति का सौंदर्य भी दिखाई देता है। कृष्ण-लीला, रास, वृंदावन की छवियाँ और ग्रामीण जीवन की सहज लय उनके काव्य को लोक-रंग से भर देती हैं। सामाजिक व्यवहार, आचार-विचार, संबंधों की मर्यादा और जीवन-मूल्यों का चित्रण उनके नीति-दोहों में मिलता है, जिससे लोकाचार और रीतिरिवाजों के तत्व स्पष्ट रूप से उभरते हैं।

मनोरंजन और क्रीड़ाओं की छवियाँ—जैसे होली, झूला, ग्वाल-लीला—उनके काव्य में लोकजीवन की चंचलता और सहज उल्लास का रूप प्रस्तुत करती हैं। साथ ही लोकविश्वास, जैसे सत्कर्म का फल, ईश्वर-भक्ति और नैतिक आचरण की महत्ता, उनके दोहों में सरल रूप से व्यक्त होती है।

सबसे महत्त्वपूर्ण लोकतत्त्व उनकी भाषा है। रहीम ब्रजभाषा, अवधी और बोलचाल की सहज जनभाषा का प्रयोग करते हैं, जिससे उनका काव्य तत्काल जनमानस से जुड़ जाता है।

लोकगाथाएँ

रहीम ने अपने काव्य में लोकगाथाओं का अत्यंत प्रभावी उपयोग किया है। भारतीय लोकजीवन में प्रसिद्ध राजा शिवि की कथा—जिसमें एक कबूतर की रक्षा

के लिए राजा अपनी देह का मांस तक तुला पर रख देता है—त्याग और परोपकार की परंपरा का प्रतीक है। जब राजा अंततः अपना सिर देने को तैयार हो जाते हैं, तब अग्निदेव और इन्द्र प्रकट होकर उन्हें आशीर्वाद देकर स्वर्ग भेज देते हैं। इसी लोककथा और दधीचि ऋषि के हड्डी-दान के उदाहरण को आधार बनाकर रहीम परोपकार की महिमा को स्पष्ट करते हैं। उनका दोहा—

'रहीमन पर उपकार के करत न यारी बीच।
मांस दियो सिवि भूप ने, दीन्हों हाड दधीच।।'

यह दर्शाता है कि उपकार किसी स्वार्थ या मित्रता के गणित से नहीं बंधा होता; सच्चा परोपकार वही है जो बिना प्रतिफल की इच्छा के किया जाए।

मित्रों की स्वार्थपरता को लक्ष्य करते हुए रहीम कहते हैं कि लोग केवल अच्छे दिनों में मित्र बनते हैं, किंतु कठिन समय आने पर वही मित्र दूर हट जाते हैं। उनका दोहा—

''जैसी तुम हमसों करी, करी करी सो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हो, गाढ़े दिन रघुवी।।'

जीवन के इस कटु अनुभव को सरल रूप में प्रकट करता है। रहीम बताते हैं कि सच्चे मित्र वही हैं जो विपत्ति के समय साथ खड़े रहें, अन्यथा संकट में साथ छोड़ देने वाले मित्र केवल नाम के ही होते हैं।

रहीम की लोक-भावना ईश्वर के प्रति करुणा की प्रार्थना में भी दिखाई देती है। वे कहते हैं कि बड़े दीन-दुखियों की पुकार सुनते ही दया ईश्वर के हृदय में स्वतः आ जाती है। जिस प्रकार भगवान ने हाथी की पुकार सुनकर उसके संकट को दूर किया था, उसी प्रकार वे भक्त की प्रार्थना पर तुरंत दया करते हैं। उनके दोहों में बार-बार यह भाव उभरता है कि ईश्वर करुणामय है और सबकी पुकार सुनता है।

'हरी हरी करुना करी, सुनी जो सबकी टेर।
जग डग भरी उतावरी, हरी करी की बेर।।

जैसे दोहे लोकविश्वास के उसी दृढ़ आधार को दर्शाते हैं जिसमें ईश्वर को दयालु, सहज और अपने भक्तों का रक्षक माना गया है।

रहीम ने प्रह्लाद-भक्ति के प्रसंग को 'बरवै छन्द' में अत्यंत सुंदर ढंग से चित्रित किया है।

'भज नरहरि नारायन, तजि बकवाद।
प्रगति खंभ तें राख्यो, जिन प्रहलाद।।''

उक्त पंक्तियों में वे बताते हैं कि जिस नरहरि ने स्तंभ से प्रकट होकर प्रह्लाद

की रक्षा की, उसी ईश्वर की भक्ति ही मनुष्य को सत्य मार्ग पर ले जा सकती है।

इसी प्रकार रहीम ने भागवत के दशम स्कन्ध के लोकप्रिय प्रसंग—मथुरा में कृष्ण जन्म, गोपियों के साथ रास-लीला और इन्द्र के कोप से गोवर्धन पर्वत धारण को भी अपने दोहों व श्लोकों में अत्यंत मार्मिकता से व्यक्त किया है। इन कथाओं के माध्यम से उनका काव्य भक्ति, सौंदर्य और लोकविश्वास का सहृदय चित्र बन जाता है।

रहीम ने श्रीकृष्ण जन्म, प्रह्लाद-भक्ति और रास-लीला जैसे भागवत-प्रसंगों को अपने काव्य में अत्यंत सरल और मार्मिक भाषा में ढाला है। कृष्ण जन्म के संबंध में उनका श्लोक प्रभु के अवतरण की दिव्यता और लोक-आनंद को प्रकट करता है। प्रह्लाद की कथा में वे दिखाते हैं कि अत्याचारी हिरण्यकश्यपु द्वारा किए गए चाहे कितने भी प्रयास हों—हाथी से कुचलवाना, पर्वत से गिराना या होलिका द्वारा अग्नि में बैठाना—ईश्वर की कल्पना सच्चे भक्त की रक्षा अवश्य करती है। इसी भक्ति-विजय को रहीम अपने दोहों में व्यक्त करते हैं, जहाँ वे बताते हैं कि दैव और परिश्रम दोनों की भूमिका महत्वपूर्ण है, और अंततः धर्म ही अधर्म पर विजय पाता है।

''दीन चहै करतार जिन्हें सुख सो तो 'रहीम' टरे नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहि हाथ पसारे ।।
दैव हँसे अपनी अपनी विधि के परपंच न जात बिचारे।
बेटा भयो बसुदेव के धाम और दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे।।''

कृष्ण की रास-लीलाओं को रहीम अत्यंत भावुकता से चित्रित करते हैं। गोपियाँ मोहन के दर्शन मात्र से मोहित हो उठती हैं, नगर की स्त्रियाँ भी नंदलाल को देखकर मन से रीझ जाती हैं। रहीम इन भावों को इस तरह व्यक्त करते हैं कि रास-लीला का मधुर, मनोहारी और प्रेमपूर्ण वातावरण सहज ही उभर आता है। गोपियों के आकर्षण, लज्जा और हृदय-विकारों को वे प्रकृति और क्रीड़ा-रूपकों के माध्यम से सरलता से प्रस्तुत करते हैं।

ऊपर दिए गए सभी प्रसंगों में रहीम ने भागवत्, महाभारत और लोककथाओं से लिए गए प्रसिद्ध धर्म प्रसंगों को अपने दोहों के माध्यम से सरल, मार्मिक और नीति-प्रधान रूप में प्रस्तुत किया है।

उन्होंने कृष्ण की रास-लीला, गोपियों की मनःस्थिति, गोवर्द्धनधारण, सुदामा-कृष्ण की मित्रता, द्रौपदी चीरहरण, पाण्डवों के वनवास, अर्जुन और भीम के प्रसंग, राजा नल-दमयंती की कथा, तथा भृगु और विष्णु की सहनशीलता जैसे प्रसंगों को लेकर जीवन की नैतिकताओं—जैसे करुणा, मित्रता, सहिष्णुता, भाग्य-कर्म, बड़ों का

सम्मान, विपत्ति में धैर्य—का अत्यन्त हृदयस्पर्शी रूप में वर्णन किया।

रहीम की खास विशेषता यह रही कि धर्मकथाओं को उन्होंने जीवन-नीति और मानव-चरित्र से जोड़कर इस प्रकार लिखा कि वे केवल धार्मिक वृतांत न रहकर लोकशिक्षा का माध्यम बन गए।

इन प्रसंगों में रहीम ने पौराणिक कथाओं का सहारा लेकर मान-सम्मान, श्रद्धा और पवित्रता के महत्व को सुंदर ढंग से व्यक्त किया है।

''मान सहित विष खायके, सम्भु भए जगदीश।
बिन मान अमृत पिये, राहु कटायो शीश।।

राहु-केतु की कथा द्वारा वे बताते हैं कि सम्मान के बिना प्राप्त अमृत भी विनाशकारी हो सकता है, जबकि सम्मान सहित लिया गया विष भी कल्याणकारी बन सकता है—जैसा शिव ने समुद्र मंथन का विष पीकर जगत की रक्षा की।

''अच्युत-चरण-तरंगिनी, सिव-सिर-मालति-माल ।
हरि न बनाओ सुरसुरी, कीजी इन्दव-भाल।।''

उक्त दोहे में रहीम गंगा की महिमा का गुणगान करते हैं। वे कहते हैं कि गंगा—जो विष्णु के चरणों से निकली और शिव के जटाओं में समाई—दिव्य, पावन और सभी को पवित्र करने वाली है। वह ऐसी महान है कि भगवान भी उसे बनाते नहीं, बल्कि अपने मस्तक पर धारण करते हैं।

पौराणिक प्रसंगों और रहीम के दोहों-श्लोकों में एक ही गहरी शिक्षा निहित है—नैतिकता, चरित्र, दैव-गति और भक्ति का महत्व।

''अच्युत-चरण-तरंगिनी, सिव-सिर-मालति-माल ।
हरि न बनाओ सुरसुरी, कीजी इन्दव-भाल।।''

उक्त गंगा-स्तुति वाले संस्कृत श्लोक में रहीम गंगा की महिमा, विष्णु-शिव की पवित्रता और जीवन-मरण में दिव्य आश्रय की कामना प्रकट करते हैं।

''परि रहिबो मरिबो भखो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेश।।''

उक्त बलि-वामन अवतार के प्रसंग पर उन्होंने छल से सावधान करते हुए कहा कि छल से मिला ज्ञान भी अंततः दुखद ही होता है।

''माँगे घटत रहीम पद, कितौ करी बढ़ि काम।
तीन पैग वसुधा करी, तऊ बावनै नाम।।''

याचना (भीख) मनुष्य की गरिमा घटाती है—इसीलिए वामन ने तीन पग माँगे, पर भगवान होने पर भी वे 'भीख माँगने वाले' के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह आत्मसम्मान

का मर्म है।

अहिल्या–गुह–हनुमान के उद्धार प्रसंग में रहीम दिखाते हैं कि श्रीराम की कल्पा में कोई भेदभाव नहीं—

''मुनि–नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग।।''

''अहल्या पाषाणः प्रकृक्तियशुरासीत् कपिचमू-
गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपद्म ।।
अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे।
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर नमामुद्धरसि किम्।।''

पत्थर बनी अहिल्या, पशुरूप हनुमान, चांडाल गुह—सबका उद्धार हुआ। इसी भाव से वे अपने स्वयं के उद्धार की भी विनम्र प्रार्थना करते हैं कि जैसे राम ने सबको तारा, वैसे ही मुझे भी तारें।

''जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभूसरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि के ताही समै सुनिकारि पिता बनबास दिया।।
कहे बीच श्रहीमश् रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो बिनु हार हिया।
विधि यों न सिया रसबार सिया करबार सिया पिय सार किया।।

उपर्युक्त दोहों में रहीम बताते हैं कि मनुष्य की इच्छाओं से अधिक देवगति (भाग्य) चलता है। राम जैसे परम धर्मात्मा भी दैववश वनवास को बाध्य हुए। उनका उपदेश है— मनुष्य को अपने कर्म करते हुए दैव की योजना को समझना चाहिए।

''चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा पड़त है, सो आवत यदि देश।।''

रहीम कहते हैं कि जब भाग्य विपरीत होता है, तो राजा जैसे शक्तिशाली व्यक्ति भी अपने राज्य छोड़कर वन में रहना पड़ता है। चित्रकूट में राम का आनंदपूर्वक रहना इस बात का संकेत है कि विपत्ति आने पर कोई भी व्यक्ति उससे बच नहीं सकता।

''अनुचित वचन न मानिए, जदापि गुराइसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तें, सुजस भरत को बाढ़ि।।''

उक्त दोहे में रहीम भरत के चरित्र को आदर्श बनाते हुए कहते हैं कि—

अनुचित बात को नहीं मानना चाहिए, चाहे वह गुरु या बुजुर्ग ही क्यों न कहें। भरत ने माता कैकेयी का अनुचित आग्रह स्वीकार नहीं किया और इस कारण उसका यश राम से भी बढ़ गया।

सीता हरण की घटना को लेकर रहीम कहते हैं कि यदि राम स्वर्ण–मृग के

पीछे न गए होते, और लक्ष्मण भी न जाते, तो रावण सीता को न ले जा पाता। लेकिन जब भाग्य स्वयं किसी घटना को तय कर ले, तब वह किसी न किसी माध्यम से घटित हो जाती है।

'राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहूँ, होत आपुनें हाथ।'

हनुमान द्वारा समुद्र लाँघना और अशोक वाटिका में उत्पात मचाना—इन सबको रहीम विपत्ति नाशक शक्ति के रूप में देखते हैं। उनका बरवै हनुमान के वीर, रक्षक और दुष्ट-विनाशक रूप पर आधारित है।

'ध्यावौं विपद-बिदारन, सुवन-समीर।
खल-दानव-बन-जारन, प्रिय रघुवीर।'

रहीम कहते हैं कि जैसे विभीषण ने रावण के सारे भेद राम को बताए उसी प्रकार आँसू भी मन का भेद खोल देते हैं। जिसे घर से निष्कासित कर दिया जाए, वह किसी न किसी के सामने मन का दर्द व्यक्त करता ही है।

'रहिमन अंसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारों गेह ते, कस न भेद कहि देइ।।''

रहीम ने रामायण के इन प्रसंगों का उपयोग लोक-जीवन की गहरी सच्चाइयों को समझाने के लिए किया है। रावण-समुद्र उदाहरण के द्वारा वे बताते हैं कि कुसंगति का साथ सदैव हानि देता है, जैसे रावण के पास बसने से समुद्र की महिमा तक कम आँकी गई।

हनुमान के पर्वत लाने के प्रसंग को लेकर रहीम समझाते हैं कि सच्चे और निःस्वार्थ कार्य की महानता कार्यकर्ता के नाम से नहीं, उसके उद्देश्य से होती है इसलिए हनुमान की सेवा को सबसे उच्च माना गया।

इसी तरह वे कहते हैं कि बड़ों द्वारा किया गया छोटा-सा कार्य भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि उसमें अनुभव, समर्पण और जिम्मेदारी जुड़ी होती है।

रावण-प्रसंग के माध्यम से रहीम यह स्थापित करते हैं कि इस संसार में प्रत्येक जीवन मूल्यवान है, और उसके पीछे एक व्यापक सृष्टि-क्रम कार्य करता है।

इस प्रकार रहीम के लोकतत्त्व रामायण की कहानियों के माध्यम से जीवन-नीति, कुसंगति से बचाव, विनम्रता और कर्म की श्रेष्ठता को सहज रूप से व्यक्त करते हैं।

लोक वाहन

रहीम के काव्य में लोकवाहनों का चित्रण अत्यंत सजीव और लोक-जीवन से

जुड़ा हुआ मिलता है। घोड़ा, हाथी और बैल—ये तीनों उस समय के प्रमुख लोकवाहन थे और रहीम ने इन्हें केवल वाहन नहीं, बल्कि मानवीय गुणों और भावनाओं के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

घोड़े की नाल, उसकी साज-सज्जा और उसके सौंदर्य को रहीम ने नालबंदिनी के उल्लेख के माध्यम से रूपायित किया है, जो यह बताता है कि घोड़ा सामान्य जनता के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण वाहन था।

''यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार।।''

घोड़े की गति, उसकी सेवा-भावना और उसकी तीव्रता को कवि ने सज्जनों की परोपकारी प्रकृति और प्रेम-पथ की कठिनाई से जोड़ा है।

''नालबंदिनी रैन दिन, रहे सखिन के नाल।
जोबन अंग तुरंग की, बांधन देह न नाल।।''

इसी प्रकार हाथी—जो राजसी और सामर्थ्य का प्रतीक था—का उल्लेख महावतिन के माध्यम से हुआ है। प्रेम में मग्न नायिका को हाथी पर बैठा दिखाकर रहीम ने लोकजीवन की सहजता और सौंदर्य को व्यक्त किया है।

''बैठी महत महावतिन, थरै जु आपन अंग।
जोबन मद में गलि चढ़ी, फिरे जु पिय के संग।।''

बैल, जो गांवों में माल ढोने और कृषि कार्यों का मुख्य आधार था, रहीम के प्रेम-दोहों में भी प्रतीक रूप में आता है।

''रहिमन पेंडो प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पांव पिपीलिका, लोग लदावत बैल।।''

बैलों की सेविका गड़िबारिन का संकेत यह स्पष्ट करता है कि बैल ग्रामीण भारत का सर्वाधिक उपयोगी और लोक-निकट वाहन था।

''बिरही के उर में गड़े, गड़िबारिन को नेह।
शिव-बाहन सेवा कर, पावै सिद्धि सनेह।।''

रहीम ने तीसरे लोक-वाहन के रूप में ऊँट का अत्यंत सजीव वर्णन किया है। ऊँट उस समय विशेष रूप से रेगिस्तानी और शुष्क क्षेत्रों में प्रयोग होने वाला उपयोगी वाहन था। रहीम ने 'सरवानी 'अर्थात ऊँट पालने वाली स्त्री—का उल्लेख कर यह दिखाया है कि ऊँट लोकजीवन का एक अभिन्न हिस्सा था।

''सरवानी विपरीत रस, किय चाहै न डराइ।
दुरै न बिरही को दुरयी, ऊँट न छाग समाय।।''

दोहा यह बताता है कि सरवानी ऊँट को चलाने या रोकने के लिए कठोरता भी अपनाती है, किंतु उसके इस विपरीत व्यवहार से ऊँट का स्वभाव नहीं बदलता। रहीम इस प्रसंग से यह भाव व्यक्त करते हैं कि जैसे बिरही व्यक्ति अपने प्रेम-वियोग से विचलित नहीं होता, उसी प्रकार ऊँट भी किसी कठोरता या डराने से अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। ऊँट न तो संकरे स्थानों में आसानी से मुड़ सकता है और न ही वह बकरी की तरह सिमट सकता है—यह उसका प्राकृतिक स्वरूप है।

लोक नृत्य

मध्यकालीन भारत में लोक-नृत्य, लोक-संगीत और लोक-वाद्यों की परंपरा अत्यंत जीवंत थी। यद्यपि रहीम ने सीधे तौर पर लोकनृत्य या संगीत की विस्तृत चर्चा नहीं की, किंतु उन्होंने उन वाद्य-यंत्रों, कलाकार जातियों और उनके प्रयोगों का चित्रात्मक वर्णन कर उस समय की लोक-सांस्कृतिक दुनिया को उजागर किया है।

नगारचिन और डफालिन जैसे वाद्य बनाने वालों तथा पातुरी और डोमनी जैसी गायक-नर्तकी जातियों का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि लोक-संगीत समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा था। नगाड़ा और डफली का वर्णन विशेष अवसरों और उत्सवों में इनके उपयोग को दर्शाता है। डफालिनी के प्रसंग से डफली की ताल, मृदंग के छाला-संयोजन से उसकी ध्वनि, तथा बिछुए की रुनझुन को रतिपति की नौबत के रूप में प्रस्तुत करना लोक जीवन की सहज संगीतात्मकता को दिखाता है।

रहीम ने पातुरी और डोमनी की कला का ऐसा चित्र खींचा है जिसमें उनके सौंदर्य, भाव-प्रवणता और गायन-कौशल की झलक मिलती है। नट और नटिनी के वर्णन में रस्सी पर चलने वाले नृत्य, देह-चलन, साहस और नयन-भावों की सजीव छवि उभरती है। इन प्रसंगों के माध्यम से रहीम मध्यकालीन लोक-संगीत, लोक-नृत्य और लोक-कलाओं की धड़कन को अपने काव्य में जीवंत कर देते हैं।

लोक-शिल्प

रहीम के काव्य में लोक-शिल्प का संसार अत्यंत जीवंत रूप में सामने आता है। वे मध्यकालीन भारतीय समाज के उन कारीगरों, दस्तकारों और लोक-कलाकारों से परिचित थे, जो मिट्टी, धातु, लकड़ी, सूत और रंगों से जीवन की आवश्यक वस्तुएँ और सौंदर्य-संपन्न कलाएँ रचते थे।

कुम्हार और उसके चाक का वर्णन मिट्टी के बर्तनों की सृजन-प्रक्रिया की गतिशीलता को दिखाता है। ठठेरे के धातु-कार्य, लुहार के अग्नि-संघर्ष, और चित्रकार की सूक्ष्म दृष्टि—इन सबमें रहीम ने शिल्पियों की तपस्या और कलात्मकता दोनों को पकड़ा है। उनके दोहों में इन जातियों की स्त्रियाँ प्रतीक रूप में सामने आती हैं,

जिनके माध्यम से वे उस शिल्प की अनुभूति कराते हैं जो उनके जीवन का आधार था।

वस्त्र निर्माण से जुड़ी पटइन, कोरिन, छीपिन, कुंदिन आदि स्त्रियों का चित्रण लोक-वस्त्र संस्कृति की विविधता को उभारता है—सूत कातने से लेकर छपाई और कढ़ाई तक। रहीम इन महिलाओं के शारीरिक सौन्दर्य और भाव-भंगिमाओं के माध्यम से उनके शिल्प की विशेषताओं को रूपक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

नगाड़ा, डफ, ढाल, कुप्पी जैसे छोटे लेकिन महत्वपूर्ण लोक-शिल्प भी उनकी दृष्टि से छूटे नहीं। नगाड़ा बनाने के उदाहरण से वे शिल्प में सामग्री की गुणवत्ता का महत्व बताते हैं, जबकि ढाल और कुप्पी का वर्णन स्त्रियों के प्रतीक-चित्र के माध्यम से करते हैं।

लोक-वेशभूषा

रहीम के काव्य में मध्यकालीन भारतीय स्त्री की लोक-वेशभूषा अत्यंत जीवंत रूप में उभरती है। उस समय की नारी सरल, सौंदर्यप्रिय, श्रृंगार-संपन्न और परंपराओं से जुड़ी हुई थी। सिर पर ओढ़ी जाने वाली चुनरी और ओढ़नी स्त्री-सौम्यता का प्रतीक थीं—रहीम इनकी लहराती छवि को प्रेम और भावुकता से जोड़ते हैं। कंचुकी, जो वक्ष-भाग को ढँकने के लिए पहनी जाती थी, रहीम की दृष्टि में सौंदर्य, विनय और स्त्री-लज्जा की पारंपरिक पहचान बनकर आती है।

सोलह श्रृंगार में सम्मिलित काजल, सुरमा, सिन्दूर और महावर नारी के नयन, मस्तक और चरणों की कोमल आभा को विशेष रूप देते थे। रहीम इन सबका वर्णन प्रेम, व्यंग्य और सौंदर्य के मिश्रण के साथ करते हैं—काजल में नयनों की गहराई, महावर में पग-चरणों की शोभा और सिन्दूर में सौभाग्य का लाल गौरव झलकता है।

भारतीय नारी आभूषण-प्रिय रही है। रहीम इस अलंकार-प्रियता को अत्यंत सहजता से प्रस्तुत करते हैं—गले की मुक्तामाल, नाक की नथुनी, पैरों की पाजेब, कड़े, जेहरियाँ, कमर की करधनी—ये सब स्त्री-सौंदर्य के लोक-रूप को संपन्न बनाते हैं। चलती हुई स्त्री के पैरों में पाजेब की झंकार, बिछुए की चमक, नथुनी की कोमलता इन सबको वे सूक्ष्म संवेदनशीलता से काव्य में ढालते हैं।

लोक-व्यवसाय

रहीम ने अपने काव्य में मध्यकालीन भारतीय समाज के लोक-व्यवसायों का अत्यंत सूक्ष्म, लेकिन अप्रत्यक्ष चित्रण किया है। उन्होंने व्यवसायों को सीधे नहीं, बल्कि उन व्यवसायों से जुड़ी स्त्रियों तथा उनके जीवन-व्यवहार के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिससे उस समय के समाज, आजीविका और लोक-जीवन की यथार्थ

छवि उभरती है।

भारतीय लोक में साहूकारी, कुम्भकारी, स्वर्णकारी, जौहरी, व्यापार, कृषि, दूध-बेचने, सब्जी-बेचने, साबुन बनाने, कपड़ा रंगने, धोबी का काम, बर्तन बनाना, धनुष बनाने, चमड़े का काम तथा अन्य अनेक लघु व्यवसाय सदियों से जीवन-यापन का आधार रहे हैं। रहीम इन सभी व्यवसायों को लोक-संस्कृति का अंग मानते हुए उनके संकेत अपने दोहों में बिखेर देते हैं।

व्यापारी वर्ग का वर्णन वे 'मैदा साह' और 'बनिआइन' के रूप में करते हैं, जहाँ व्यापारी की बुद्धि, लाभ-हानि की चिंता और बाज़ार की चहल-पहल का सुंदर आभास मिलता है। स्वर्णकार और जौहरी व्यवसाय में उनके दोहे नारी-सौंदर्य की तुलना आभूषणों की परख से जोड़ते हैं—यह तुलना उस समय के कारीगरों की दक्षता और सामाजिक भूमिका को जीवंत करती है।

कपड़ा रंगने वाली रंगरेजिन, मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्हार, धातु के बर्तन बनाने वाले ठठेरा, तथा जौहरिन—इन सबके माध्यम से रहीम दिखाते हैं कि लोक-व्यवसाय भारतीय समाज के हर घर-आँगन और जीवन-संस्कार से जुड़े हुए थे। उनके काव्य में इन व्यवसायों को केवल पेशा नहीं, बल्कि लोक-जीवन की धड़कन के रूप में देखा गया है।

लोक क्रीडाएँ एवं मनोरंजन

भारतीय लोकजीवन में मनोरंजन के अनेक रूप प्राचीन काल से प्रचलित रहे—बच्चों के खेल, कुश्ती-दंगल, रस्साकशी, कठपुतली, बाजीगरी, नटों के करतब आदि। रहीम ने अपने दोहों में इन लोकक्रीड़ाओं का अत्यन्त जीवंत चित्रण किया है।

चौसर और शतरंज जैसे लोकप्रिय खेलों को उन्होंने दार्शनिक प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत किया। चौसर की गोटियों की तरह जीवन की अनिश्चितता और सुख-दुःख के परिवर्तन को समझाया। शतरंज की चालों के आधार पर उन्होंने नीति और जीवन के व्यवहारिक नियम बताए—सीधी चाल वाला साधारण प्यादा भी वजीर बन सकता है, जबकि टेढ़ी चाल चलने से पतन भी सम्भव है।

बाजीगरी और नटों की कला भारतीय लोक में चमत्कार और आश्चर्य का प्रमुख स्रोत रही है। रहीम ने इन कौशलों को अत्यन्त यथार्थ रूप में दिखाया—नटनी का बाँस पर चढ़ना, नटों द्वारा शरीर को मोड़ना-तोड़ना, स्वाँग रचना, दर्शकों को आकृष्ट करना इन सबको उन्होंने रोचक और सुन्दर ढंग से चित्रित किया।

इसके आगे रहीम लोकविश्वास, आस्था और अध्यात्म की ओर बढ़ते हैं। भारतीय लोक में ईश्वर, गुरु, सूर्य और अन्य दैवी शक्तियों को लोक-रक्षक माना गया है।

रहीम ने इस विश्वास को दोहों में व्यक्त किया—ईश्वर संकटमोचन है, दु:खों का नाश करता है, और मनुष्य उसके संरक्षण में सुरक्षित रहता है।

उन्होंने बार-बार बताया कि मनुष्य कठपुतली है—सब कुछ ईश्वर की इच्छा से चलता है। कर्म करने की बात मानते हुए भी उन्होंने स्वीकार किया कि भाग्य अथवा 'भावी' अत्यन्त प्रबल है।

मानव जीवन की दुर्लभता पर भी रहीम का विशेष ध्यान है। भारतीय परम्परा के अनुसार मनुष्य-देह चौरासी लाख योनियों के पश्चात मिलती है—इसलिए प्रेम, सद्भाव और सत्कर्म का महत्व रहा है।

लोकाचार

रहीम ने अपने नीति-दोहों में समाज में प्रचलित लोकाचारों—अर्थात् अच्छे आचरण, सद्भाव, सामाजिक मर्यादा और चरित्र की पवित्रता—का अत्यन्त गहन चित्रण किया है। उनके अनुसार मनुष्य का वास्तविक सम्मान उसके बाहरी रूप में नहीं, बल्कि उसके आचार, विनम्रता, संयम और व्यवहार में निहित है।

वे कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में घर, समाज, गुरु, वंश, लज्जा और मान—ये सभी नैतिक नियंत्रण के रूप में उपस्थित रहते हैं। जिनके मन में इन सभी मूल्यों का डर (अर्थात् सम्मान और मर्यादा का भाव) होता है, वही सच्चे अर्थों में ईश्वर के प्रिय बनते हैं।

रहीम दुष्टों की संगति को सर्वथा छोड़ने का उपदेश देते हैं। उनकी दृष्टि में बुरे लोगों का साथ सज्जन व्यक्ति को भी कलुषित कर देता है—जैसे काले पात्र को छूते ही हाथ काले हो जाते हैं। इसलिए श्रेष्ठ आचरण हेतु बुरे स्वभाव वालों से दूर रहना आवश्यक है।

सज्जनों की पहचान बताते हुए वे कहते हैं कि सच्चे सुजान व्यक्ति अपने हित के लिए नहीं, बल्कि दूसरों की भलाई के लिए कार्य करते हैं। जैसे वृक्ष स्वयं फल नहीं खाता, सरोवर अपने जल को नहीं पीता—उसी तरह सज्जन अपनी संपत्ति व सामर्थ्य को लोकहित में लगाते हैं।

रहीम का लोकाचार का मूल संदेश यह है कि समाज में सम्मान पाने के लिए क्रोध का त्याग, मधुर वचन, और विनम्र व्यवहार अत्यन्त आवश्यक हैं। जो व्यक्ति अभिमान छोड़कर सरलता और मधुरता अपनाता है, वही हर स्थान पर सम्मानित होता है।

धार्मिक रीतिरिवाज

रहीम के काव्य में भारतीय लोकजीवन की धार्मिक आस्थाएँ, पूजा-विधियाँ

और परम्परागत रीतिरिवाज सजीव रूप में उभरते हैं। भारतीय समाज में प्रचलित यह मान्यता है कि हर शुभ कार्य का आरम्भ गणेश–वंदना से किया जाता है, ताकि विघ्नों का नाश हो और कार्य सफल हो। रहीम ने भी अपने बरवै ग्रन्थ की शुरुआत गणपति–वंदना से करके इस लोक–परम्परा का सम्मान किया है। इससे स्पष्ट होता है कि वे धार्मिक रीतियों के महत्व को भली–भाँति समझते थे।

लोक परम्परा में यह भी माना जाता है कि मनोकामनाओं की पूर्ति मंदिरों और देव–स्थानों पर जाने से होती है। इसी भावना को रहीम ने अपने नीतिपरक दोहे में व्यक्त किया है जहाँ वे बताते हैं कि जैसे बैल को दोनों पेंडों का सहारा चाहिए, वैसे ही मनुष्य भी विभिन्न देव–स्थलों पर जाकर अपने विश्वास को स्थिर रखता है। यह लोकमानस की सरल धार्मिक दृष्टि और ईश्वर–भक्ति की सहज अभिव्यक्ति है।

भारतीय समाज में कुल–देवता का विशेष स्थान होता है। किसी भी शुभ कार्य से पहले कुलदेवता को स्मरण करना, आशीर्वाद प्राप्त करना आवश्यक माना जाता है। रहीम ने इसे भी स्वीकारते हुए श्रीकृष्ण को एक प्रकार से रक्षक और कुल–देवता के रूप में संबोधित किया है, जो लोक परम्परा में देवों की भूमिका को दर्शाता है।

पूजा–विधियों में माला–जप का रिवाज विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। लोकमानस में माला के मोतियों को गिनते हुए स्मरण और ध्यान करना ईश–भक्ति का सहज माध्यम माना गया है। रहीम ने अपने श्रृंगारिक बरवों में भी जप–माला का उल्लेख करते हुए दिखाया है कि लोकविश्वास और धार्मिक आस्था भावनात्मक अनुभूतियों से कितनी गहराई से जुड़ी रहती है।

सामाजिक प्रथाएँ व रीतिरिवाज

रहीम के काव्य में केवल धार्मिक विश्वास ही नहीं, बल्कि तत्कालीन समाज में प्रचलित सामाजिक प्रथाएँ, जातीय संरचना और लोक–रीतियाँ भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। उनके दोहों में उस समय के भारतीय समाज की जातिव्यवस्था, लोकजीवन की विविधता और सामाजिक व्यवहार के संकेत सहज रूप से मिलते हैं।

तत्कालीन भारत में वर्ण–व्यवस्था सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण आधार थी। रहीम इसके विभिन्न वर्गों का वर्णन करते हुए समाज की वास्तविक स्थितियों को उजागर करते हैं। ब्राह्मण को वे श्रेष्ठ जाति के रूप में प्रस्तुत कर कहते हैं कि ब्राह्मण के चरण–स्पर्श मात्र से पाप नष्ट होते हैं। इससे उस समय के समाज में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और धार्मिक महत्व का पता चलता है।

वैश्य या व्यापारी वर्ग का चित्रण भी रहीम अत्यंत स्वाभाविक ढंग से करते हैं। उन्होंने बनिहारिन या व्यापारी स्त्रियों के व्यवहार, सौदेबाजी और सौंदर्य के माध्यम से

यह दिखाया कि वैश्य वर्ग सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण केंद्र था।

रहीम निम्न मानी जाने वाली जातियों का भी उल्लेख करते हैं। खटकिन, चूहरी जैसी जातियों का चित्रण उस समय की सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव और लोकजीवन की विविधता को अभिव्यक्त करता है। इन वर्णनों में समाज के ऊँच-नीच के दृष्टिकोण, स्त्रियों की भूमिकाएँ और जातिगत मान्यताएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

रहीम इन सामाजिक रीतिरिवाजों और जातीय प्रथाओं का वर्णन केवल वर्णनात्मक उद्देश्य से ही नहीं करते, बल्कि वे यह दिखाते हैं कि समाज किस प्रकार विविध परम्पराओं, व्यवहार-रूपों और जातिगत व्यवस्थाओं से बनता है। उनका काव्य तत्कालीन भारतीय सामाजिक संरचना का एक जीवंत दर्पण बन जाता है।

लोक शब्दावली

रहीम के काव्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता उनकी लोकशब्दावली है, जिसमें वे आम जनता की बोली, ग्रामीण जीवन की ध्वनियों और विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के शब्दों को सहजता से शामिल करते हैं। उनके दोहों में राजस्थानी, ब्रज, उर्दू तथा संस्कृत के तद्भव रूपों का व्यापक प्रयोग मिलता है, जिससे उनका काव्य अधिक प्राकृतिक, वास्तविक और लोकजीवन के निकट प्रतीत होता है।

टाबरा (बालक), फेटो (साफा), लुगाई (स्त्री), बटोही (राहगीर), फागुन, माटी, खाट, गैल (रास्ता), ब्याव (विवाह) जैसे शब्द उस समय के ग्रामीण और लोक-जीवन की सहज भाषा को दर्शाते हैं। इन शब्दों के प्रयोग से रहीम ने लोकमानस की अनुभूतियों, भावनाओं और जीवन-संस्कारों को अत्यंत जीवंत रूप दिया है।

रहीम केवल शब्द ही नहीं लेते, बल्कि लोकोक्तियों और मुहावरों को भी अपने काव्य में बड़े प्रभावी ढंग से प्रयुक्त करते हैं। उनके दोहों में यह स्पष्ट होता है कि वे लोकबुद्धि, लोक-अनुभव और जीवन के व्यावहारिक सत्य को इन लोकप्रयोगों द्वारा अभिव्यक्ति देते हैं।

जैसे—

- 'ऊँट छाग में नहीं समा सकता"—बड़ी वस्तु छोटे में नहीं समा सकती,
- 'सबल से बैर कर निर्बल नहीं रह सकता"—यह जीवन का कठोर यथार्थ,
- 'करौंदा राई नहीं हो सकता'—छोटा व्यक्ति थोड़ी उपलब्धि पर घमंड कर बैठता है।

ऐसे प्रयोगों से रहीम का काव्य लोकधर्मी, सहज और जीवन के वास्तविक

अनुभवों से युक्त बन जाता है। उनकी भाषा में न तो बनावट है, न कृत्रिमता—सिर्फ लोकजीवन की मिट्टी की सुगंध है, जो उनके काव्य को जन-जन के निकट ले आती है।

लोक-वस्तुएँ

रहीम के काव्य में लोकजीवन से जुड़ी वस्तुओं का अत्यंत जीवंत चित्रण मिलता है। वे ग्रामीण जीवन में प्रयुक्त सामान्य साधनों—चाक, मसक, आवज, खरहरा, रहट, सम्पुटी, छाज, ढेकुली, भाड़ आदि—को केवल दिखाते ही नहीं, बल्कि उनके माध्यम से मनुष्य के भावों और जीवन-संदर्भों को भी समझाते हैं।

कुम्हार के 'चाक' की निरंतर घूमती गति को वे मानव जीवन की चंचलता और अस्थिरता से जोड़ते हैं—जैसे चाक पर रखे घड़े का आधार कमजोर हो तो वह टिक नहीं पाता, उसी प्रकार मनुष्य भी भ्रम और अस्थिर चित्त में सही निर्णय नहीं ले सकता—

'निरखि प्रान घट ज्यों रहे...' पंक्तियाँ इसी मानवीय दुर्बलता को दर्शाती हैं।

इसी तरह ग्रामीण सिंचाई साधन रहट को वे मानवीय स्वभाव की व्याख्या के लिए रूपक बनाते हैं— जैसे रहट सामने से खाली और पीछे से भरा दिखता है, वैसे ही छोटे मन के लोग बाहर से विनम्र और भीतर से छलपूर्ण दिखाई दे सकते हैं—

'रहिमन धरिया रहट की...' दोहा इसी द्वैध स्वभाव का चित्रण करता है।

पेड़-पौधों का वर्णन

रहीम ने अपने काव्य में प्रकृति और पेड़-पौधों को केवल वस्तु रूप में नहीं, बल्कि मानवीय जीवन, व्यवहार और नीति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। वे प्रत्येक वृक्ष या पौधे के भौतिक लक्षणों को देखकर उनसे गहरी जीवन-सीख निकालते हैं।

गन्ने के गुण को वे मनुष्य के स्वभाव से जोड़ते हैं—जैसे गन्ने में गाँठ पर रस नहीं होता, वैसे ही मनुष्य में जहाँ मैं, अहंकार और कठोरता की गाँठ होती है, वहाँ प्रेम और मिठास नहीं मिलती।

इसी विचार को वे प्रेम के क्षेत्र में भी लागू करते हैं—जहाँ संबंधों में गाँठ पड़ जाए, वहाँ रस और माधुर्य समाप्त हो जाता है।

अमरबेल का उदाहरण उन्हें भक्ति के क्षेत्र में मिलता है। यह बिन मूल की बेल जिस वृक्ष पर चढ़ती है, उसे नष्ट कर देती है। रहीम इसे उन मनुष्यों से जोड़ते हैं जो अपने सच्चे आधार यानी ईश्वर को छोड़कर इधर-उधर भटकते रहते हैं, और अंततः जीवन को कमजोर बना लेते हैं।

अरंड के पौधे का चिकना पत्ता और कच्ची शाखाएँ देखकर वे नीतिगत शिक्षा देते हैं कि कुछ लोग बाहर से भले आकर्षक दिखते हों, पर भीतर से दुर्बल होते हैं और कठिन समय का भार नहीं उठा सकते।

कँटीला बबूल उन्हें उन लोगों का प्रतीक दिखाई देता है जो न स्वयं उपयोगी होते हैं, न किसी को होने देते हैं—वे दूसरों की प्रगति में बाधा उत्पन्न करते हैं, जैसे बबूल का पेड़ अपने आसपास की वनस्पति को बढ़ने नहीं देता।

बरगद के पेड़ की तरह वे बताते हैं कि जैसे पुराना बरगद अपनी टहनियों से जटाएँ (हवाई जड़ें) निकालकर स्वयं को थामे रखता है, वैसे ही जीवन में कठिन समय आने पर मजबूत संबंध और सच्चे बंधु मनुष्य को सहारा देते हैं।

निष्कर्षत: रहीम के काव्य में लोकभाषा, लोकशब्द, लोकवस्तुएँ, पेड़-पौधे और लोकोक्तियाँ सब जीवन के यथार्थ से जुड़कर आते हैं। उन्होंने राजस्थानी, अवधी, ब्रज, उर्दू तथा संस्कृत-तद्भव शब्दों को अपनाकर अपनी भाषा को जनजीवन की सजीव भाषा बना दिया। लोकशब्दों—जैसे टाबरा, लुगाई, गैल, माटी, बाट, फाग, खाट आदि—से उन्होंने समाज की वास्तविक सांस्कृतिक छवि उकेरी। रहीम ने लोक-वस्तुओं जैसे चाक, रहट, छाज, ढेकुली आदि को भी प्रतीक बनाकर मानवीय मनोदशाओं और व्यवहारों का चित्रण किया। इसी प्रकार ऊँट, सरवानी, मगर, दीपक, पतंग जैसे लोकजीवन के जीव-जंतुओं व वस्तुओं के माध्यम से सरल पर गहरी नीतियाँ दीं।

पेड़-पौधों—गन्ना, अमरबेल, अरंड, बबूल, बरगद—को भी उन्होंने केवल वर्णन मात्र नहीं किया, बल्कि इनके स्वभाव से जीवन-सत्य और नीति-बोध प्रकट किया।

❖❖❖